4

आदिवासी, *दीकु* और एक स्वर्ण युग की कल्पना

0865CH04

1895 में बिरसा नाम के एक आदमी को झारखंड में छोटानागपुर के जंगलों और गाँवों में घूमते देखा गया। लोग कहते थे कि उसके पास चमत्कारी शक्तियाँ हैं – वह सारी बीमारियाँ दूर कर सकता था और अनाज की छोटी सी ढेरी को कई गुना बढ़ा देता था। बिरसा ने खुद यह ऐलान कर दिया था कि उसे भगवान ने लोगों की रक्षा और उनको *दीकुओं* (बाहरी लोगों) की गुलामी से आज़ाद कराने के लिए भेजा है। कुछ समय के भीतर हज़ारों लोग बिरसा के पीछे चलने लगे। वे उसे भगवान मानते थे। उन्हें यक़ीन था कि वह उनकी समस्याएँ दूर करने आया है।

बिरसा का जन्म एक मुंडा परिवार में हुआ था। मुंडा एक जनजातीय समूह है जो छोटानागपुर में रहता है। बिरसा के समर्थकों में इलाके के दूसरे आदिवासी – संथाल और उराँव – भी शामिल थे। ये सभी अपने आसपास आ रहे बदलावों और अंग्रेज़ शासन के कारण पैदा हो रही समस्याओं से बेचैन थे। उनकी परिचित जीवन पद्धति नष्ट होती दिखाई दे रही थी, आजीविका खतरे में थी और धर्म छिन्न-भिन्न हो रहा था।

चित्र 1 : *उड़ीसा के डोंगरिया कंध क़बीले की महिलाएँ बाज़ार जाते हुए नदी से गुजर रही हैं।*

बिरसा किन समस्याओं को हल करना चाहता था? जिन्हें *दीकु* कहा जा रहा था, वे बाहरी लोग कौन थे? उन्होंने इलाक़े के लोगों को गुलाम कैसे बना लिया था? अंग्रेज़ों के राज में आदिवासियों के साथ क्या हो रहा था? आदिवासियों का जीवन किस तरह बदल रहा था? इस अध्याय में हम ऐसे ही कुछ सवालों पर विचार करेंगे।

पिछले साल आपने आदिवासी समाजों के बारे में पढ़ा था। ज़्यादातर क़बीलों के रीति-रिवाज और रस्में ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित रीति-रिवाजों और रस्मों से बहुत अलग थीं। इन समाजों में ऐसे गहरे सामाजिक भेद भी नहीं थे जो जाति पर आधारित समाजों में दिखाई देते हैं। एक क़बीले के सारे लोग कुटुम्ब के बँधनों में बँधे होते थे। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं है कि आदिवासियों के बीच कोई आर्थिक और सामाजिक फ़र्क़ नहीं था।

जनजातीय समूह किस तरह जीते थे?

उन्नीसवीं सदी तक देश के विभिन्न भागों में आदिवासी तरह-तरह की गतिविधियों में सक्रिय थे।

कुछ *झूम* खेती करते थे

उनमें से कुछ समुदाय *झूम* खेती करते थे। *झूम* खेती घुमंतू खेती को कहा जाता है। इस तरह की खेती अधिकांशत: जंगलों में छोटे-छोटे भूखण्डों पर की जाती थी। ये लोग ज़मीन तक धूप लाने के लिए पेड़ों के ऊपरी हिस्से काट देते थे और ज़मीन पर उगी घास-फूस जलाकर साफ कर देते थे। इसके बाद वे घास-फूस के जलने पर पैदा हुई राख को खाली ज़मीन पर छिड़क देते थे। इस राख में पोटाश होती थी जिससे मिट्टी उपजाऊ हो जाती थी। वे कुल्हाड़ों से पेड़ों को काटते थे और कुदालों से ज़मीन की ऊपरी सतह को खुरच देते थे। वे खेतों को जोतने और बीज रोपने की बजाय उन्हें बस खेत में बिखेर देते थे। जब एक बार फ़सल तैयार हो जाती थी तो उसे काटकर वे दूसरी जगह के लिए चल पड़ते थे। जहाँ से उन्होंने अभी फ़सल काटी थी वह जगह कई साल तक **परती** पड़ी रहती थी।

घुमंतू किसान मुख्य रूप से पूर्वोत्तर और मध्य भारत की पर्वतीय व जंगली पट्टियों में ही रहते थे। इन आदिवासी समुदायों की जिंदगी जंगलों में बेरोकटोक आवाजाही और फ़सल उगाने के लिए ज़मीन और जंगलों के इस्तेमाल पर आधारित थी। वे केवल इसी तरीके से घुमंतू खेती कर सकते थे।

परती – कुछ समय के लिए बिना खेती छोड़ दी जाने वाली ज़मीन ताकि उसकी मिट्टी दोबारा उपजाऊ हो जाए।

साल – एक पेड़।

महुआ – एक फूल जिसे खाया जाता है या शराब बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

कुछ शिकारी और संग्राहक थे

बहुत सारे इलाकों में आदिवासी समूह पशुओं का शिकार करके और वन्य उत्पादों को इकट्ठा करके अपना काम चलाते थे। वे जंगलों को अपनी ज़िंदगी के लिए बहुत ज़रूरी मानते थे। उड़ीसा के जंगलों में रहने वाला खोंड समुदाय इसी तरह का एक समुदाय था। इस समुदाय के लोग टोलियाँ बना कर शिकार पर निकलते थे और जो हाथ लगता था उसे आपस में बाँट लेते थे। वे जंगलों से मिले फल और जड़ें खाते थे। खाना पकाने के लिए वे **साल** और **महुआ** के बीजों का तेल इस्तेमाल करते थे। इलाज के लिए वे बहुत सारी जंगली जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करते थे और जंगलों से इकट्ठा हुई चीजों को स्थानीय बाज़ारों में बेच देते थे। जब भी स्थानीय बुनकरों और चमड़ा कारीगरों को कपड़े व चमड़े की रँगाई के लिए कुसुम और पलाश

चित्र 2 – डोंगरिया कंध क़बीले की औरतें पंडानु की पत्तियाँ इकट्ठा करके ला रही हैं। इन पत्तियों से पत्तलें बनाई जाएँगी।

के फूलों की ज़रूरत होती थी तो वे खोंड समुदाय के लोगों से ही कहते थे।

इन समुदायों को चावल और अन्य अनाज कहाँ से मिलते थे? कई बार तो चीज़ों की अदला-बदली से काम चल जाता था। वे अपने कीमती वन उत्पादों के बदले ज़रूरत की चीज़ें ले लेते थे। कई बार उन्हें ज़रूरी चीजें खरीदने के लिए अपनी मुट्ठी भर आमदनी का सहारा लेना पड़ता था। उनमें से कई लोग आस पास के गाँवों में नौकरी भी करते थे। कोई बोझ ढोता था तो कोई सड़क निर्माण कार्यों में नौकरी करता था। कई आदिवासी खेत मज़दूर थे। जब वन उत्पाद कम पड़ जाते थे तो आदिवासियों को मज़दूरी के लिए ज्यादा भटकना पड़ता था। लेकिन उनमें से बहुत सारे समुदाय – जैसे मध्य भारत के बैगा – औरों के लिए काम करने से कतराते थे। बैगा खुद को जंगल की संतान मानते थे जो केवल जंगल की उपज पर ही ज़िंदा रह सकती है। मज़दूरी करना बैगाओं के लिए अपमान की बात थी।

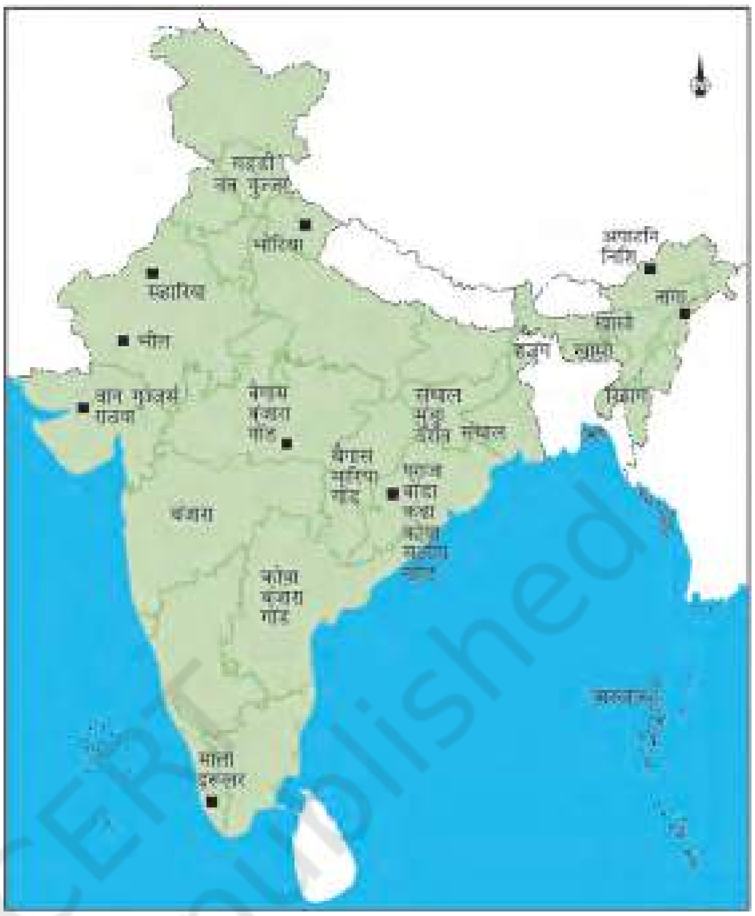

चित्र 3 – *भारत में कुछ आदिवासी समुदायों के इलाक़े।*

जो चीज़ें आसपास पैदा नहीं होती थीं उन्हें हासिल करने के लिए आदिवासियों को खरीद-फ़रोख्त भी करनी पड़ती थी। इसकी वजह से वे कभी-कभी व्यापारियों और महाजनों पर आश्रित हो जाते थे। व्यापारी बेचने की चीजें लेकर आते थे और भारी कीमत पर चीज़ें बेचते थे। सूदखोर महाजन भी आदिवासियों को कर्ज़ा तो देते थे लेकिन उसका ब्याज बहुत ज़्यादा होता था। इस तरह बाजार और वाणिज्य ने आदिवासियों को कर्ज़ और गरीबी में ढकेल दिया था। लिहाज़ा, वे महाजनों और व्यापारियों को बाहरी शैतान और अपनी सारी मुसीबतों की जड़ मानने लगे थे।

कुछ जानवर पालते थे

बहुत सारे आदिवासी समूह जानवर पालकर अपनी ज़िंदगी चलाते थे। वे चरवाहे थे जो मौसम के हिसाब से मवेशियों या भेड़ों के रेवड़ लेकर यहाँ से वहाँ जाते रहते थे। जब एक जगह घास खत्म हो जाती थी तो वे दूसरे इलाके में चले जाते थे। पंजाब के पहाड़ों में रहने वाले वन गुज्जर और आंध्र प्रदेश के लबाड़िया आदि समुदाय गाय-भैंस के झुंड पालते थे। कुल्लू के गद्दी समुदाय के लोग गड़रिये थे और कश्मीर के बकरवाल बकरियाँ पालते थे। अगले साल इतिहास की पाठ्यपुस्तक में आप उनके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

स्रोत 1

शिकार का वक्त, बुआई का वक्त, नए खेतों में जाने का वक्त

क्या आपने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि विभिन्न प्रकार के समाजों में रहने वाले लोगों की काम और समय के बारे में समझदारी एक जैसी नहीं होती? विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले घुमंतू आदिवासियों और शिकारियों की ज़िंदगी एक खास क्रम और मर्द-औरत के बीच कामों के बँटवारे से चलती थी।

ब्रिटिश मानव विज्ञानी वेरियर ऐल्विन ने 1930 और 1940 के दशकों में कई साल मध्य भारत के बैगा और खोंड समुदायों के बीच बिताए थे। ऐल्विन द्वारा लिखित निम्नलिखित अंशों को पढ़कर इस समयक्रम और कामों के बँटवारे को समझा जा सकता है। वे लिखते हैं :

> चैत में औरतें ...... इकट्ठा करने और बचे-खुचे ठूँठों को काटने जाती थीं। पुरुष बड़े पेड़ों को काटते थे और शिकार पर जाते थे। शिकार पूरे चाँद के समय पूर्व से शुरू होता था। शिकार के लिए बाँस के फंदों का इस्तेमाल करते थे। औरतें सागो, इमली और मशरूम (कुकुरमुता) आदि फल बीनकर लाती थीं। बैगा औरतें या तो केवल जड़ें या कंद इकट्ठा करती हैं या महुआ के बीज इकट्ठा करती हैं। मध्य भारत के आदिवासियों में बैगाओं को सबसे अच्छा शिकारी माना जाता था...। बैसाख में जंगलों को जलाया जाता था। औरतें अधजली लकड़ियों को ईंधन के लिए बीन लेती थीं। आदमी शिकार पर जाते रहते थे लेकिन गाँव से दूर नहीं जाते थे। जेठ में बुआयी होती थी और शिकार चलता रहता था। आषाढ़ से भादों तक मर्द खेतों में काम करते थे। क्वार में फलियाँ आने लगती थीं और कार्तिक कुटकी में पक जाती थीं। अगहन में सारी फ़सल तैयार हो जाती थी और पूस में फटकन किया जाता था। नाच-गाना और शादियाँ भी पूस के महीने में ही होती थीं। माघ में पुरुष नए **बेवड़** की तरफ चल देते थे। इस दौरान शिकार व चीज़ों का संग्रह ही जीने की मुख्य गतिविधि होती थी।
>
> यह चक्र पहले साल का होता था। दूसरे साल शिकार के लिए ज़्यादा समय मिल जाता था क्योंकि केवल कुछ फ़सलों की ही बुआयी-कटायी होती थी। क्योंकि भोजन काफी होता था इसलिए पुरुष बेवड़ों में ही रहते थे। तीसरे साल में भोजन के लिए वन उत्पादों की भी ज़रूरत पड़ने लगती थी।

वेरियर ऐल्विन द्वारा लिखित बैगा (1939) और ऐल्विन की अप्रकाशित रचना 'नोट्स ऑन द खोंड्स' (वेरियर ऐल्विन पेपर्स, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय) पर आधारित

***चित्र 4** – ईंधन की लकड़ी ले जाती एक संथाल लड़की, बिहार, 1946*

बच्चे वन उपज इकट्ठा करने के लिए अपनी माँओं के साथ जंगल में जाते हैं।

गतिविधि

बैगा औरतें और मर्द जो काम करते हैं, उनको ध्यान से पढ़ें। क्या आपको उनमें कोई क्रम दिखाई देता है? उनके कामों में क्या फ़र्क थे?

कुछ लोग एक जगह खेती करते थे

उन्नीसवीं सदी से पहले ही बहुत सारे जनजातीय क़बीले एक जगह टिक कर खेती करने लगे थे। वे बार-बार जगह बदलने की बजाय साल-दर-साल एक ही जगह खेती करते थे। वे हलों का इस्तेमाल करने लगे थे और धीरे-धीरे उन्हें ज़मीन पर अधिकार भी मिलते जा रहे थे। बहुत सारे समुदायों में छोटानागपुर के मुंडाओं की तरह ज़मीन पूरे क़बीले की संपत्ति होती थी। कुल के सभी सदस्यों को उन मूल निवासियों का वंशज माना जाता था जिन्होंने सबसे पहले आकर ज़मीन को साफ़ किया था। लिहाज़ा, ज़मीन पर सभी का बराबर हक़ होता था। फिर भी, अकसर ऐसा होता था कि कुल के कुछ लोग औरों से ज़्यादा ताकत जुटा लेते थे। कुछ मुखिया बन जाते थे और बाकी उनके अनुयायी होते थे। जो ताकतवर होते थे वे खुद खेती करने की बजाय अकसर अपनी ज़मीन बँटाई पर दे देते थे।

ब्रिटिश अफ़सरों को गोंड और संथाल जैसे एक जगह ठहरकर रहने वाले आदिवासी समूह शिकारी-संग्राहक या घुमंतू खेती करने वालों के मुकाबले ज्यादा सभ्य दिखाई देते थे। जंगलों में रहने वालों को जंगली और बर्बर माना जाता था। अंग्रेज़ों को लगता था कि उन्हें स्थायी रूप से एक जगह बसाना और सभ्य बनाना ज़रूरी है।

बेवड़ - मध्य प्रदेश में घुमंतू खेती के लिए इस्तेमाल होने वाला शब्द।

औपनिवेशिक शासन से आदिवासियों के जीवन पर क्या असर पड़े?

ब्रिटिश शासन के दौरान आदिवासी समूहों का जीवन बदल गया। आओ देखें कि ये बदलाव क्या थे।

आदिवासी मुखियाओं का क्या हुआ?

अंग्रेज़ों के आने से पहले बहुत सारे इलाकों में आदिवासियों के मुखियाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता था। उनके पास औरों से ज़्यादा आर्थिक ताकत होती थी और वे अपने इलाके पर नियंत्रण रखते थे। कई जगह उनकी अपनी पुलिस होती थी और वे ज़मीन एवं वन प्रबंधन के स्थानीय नियम खुद बनाते थे। ब्रिटिश शासन के तहत आदिवासी मुखियाओं के कामकाज और अधिकार काफ़ी बदल गए थे। उन्हें कई-कई गाँवों पर ज़मीन का मालिकाना तो मिला रहा लेकिन उनकी शासकीय शक्तियाँ छिन गईं और उन्हें ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा बनाए गए नियमों को मानने के लिए बाध्य कर दिया। उन्हें अंग्रेज़ों को नज़राना देना पड़ता था और अंग्रेज़ों के प्रतिनिधि की हैसियत से अपने समूहों को अनुशासन में रखना होता था। पहले उनके पास जो ताकत थी अब वह नहीं रही। वे परंपरागत कामों को करने से लाचार हो गए।

चित्र 5 - पूर्वोत्तर के निशी आदिवासियों के एक गाँव में लट्ठों से बना घर।
जब ये घर बनाए जाते हैं तो पूरा गाँव मदद करता है।

घुमंतू काश्तकारों का क्या हुआ?

ऐसे समूहों से अंग्रेज़ों को काफ़ी परेशानी थी जो यहाँ-वहाँ भटकते रहते थे और एक जगह ठहरकर नहीं रहते थे। वे चाहते थे कि आदिवासियों के

***चित्र 6** – गुजरात के एक जंगल में खेती करती भील औरतें।*

घुमंतू खेती गुजरात के बहुत सारे वन क्षेत्रों में अभी भी जारी है। आप देख सकते हैं कि यहाँ पेड़ों को काट दिया गया है और खेती के लिए ज़मीन साफ़ कर दी गई है।

समूह एक जगह स्थायी रूप से रहें और खेती करें। स्थायी रूप से एक जगह रहने वाले किसानों को नियंत्रित करना आसान था। अंग्रेज़ अपने शासन के लिए आमदनी का नियमित स्रोत भी चाहते थे। फलस्वरूप उन्होंने ज़मीन के बारे में कुछ नियम लागू कर दिए। उन्होंने ज़मीन को मापकर प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा तय कर दिया। उन्होंने यह भी तय कर दिया कि किसे कितना लगान देना होगा। कुछ किसानों को भूस्वामी और दूसरों को पट्टेदार घोषित किया गया। जैसा कि आप देख चुके हैं (अध्याय 2), पट्टेदार अपने भूस्वामियों का भाड़ा चुकाते थे और भूस्वामी सरकार को लगान देते थे।

झूम काश्तकारों को स्थायी रूप से बसाने की अंग्रेज़ों की कोशिश बहुत कामयाब नहीं रही। जहाँ पानी कम हो और मिट्टी सूखी हो, वहाँ हलों से खेती करना आसान नहीं होता। बल्कि, हलों की मदद से खेती करने वाले झूम काश्तकारों को अकसर नुकसान ही हुआ क्योंकि उनके खेत अच्छी उपज नहीं दे पाते थे। इसलिए, पूर्वोत्तर राज्यों के झूम काश्तकार इस बात पर अड़े रहे कि उन्हें परंपरागत ढंग से ही जीने दिया जाए। व्यापक विरोध के फलस्वरूप अंग्रेज़ों को आखिरकार उनकी बात माननी पड़ी और ऐसे क़बीलों को जंगल के कुछ हिस्सों में घुमंतू खेती की छूट दे दी गई।

वन कानून और उनके प्रभाव

जैसा कि आपने देखा है, आदिवासी समूहों का जीवन जंगलों से जुड़ा हुआ था। अत:, वन कानूनों में आए बदलावों से आदिवासियों के जीवन पर भी

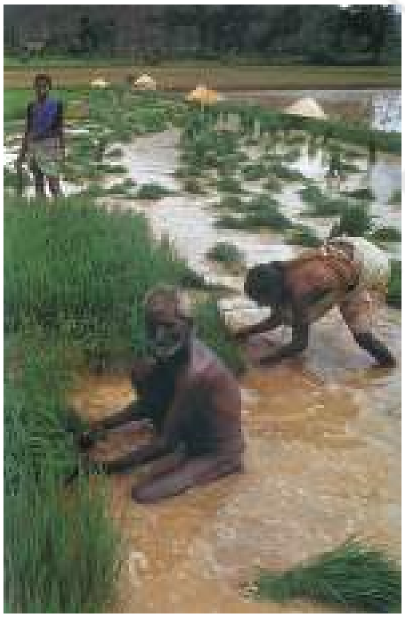

***चित्र 7** – आंध्र प्रदेश में धान के खेत में काम करते आदिवासी।*

समतल मैदानों और जंगलों में धान की खेती के बीच फ़र्क को देखें।

भारी असर पड़ा। अंग्रेज़ों ने सारे जंगलों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था और जंगलों को राज्य की संपत्ति घोषित कर दिया था। कुछ जंगलों को आरक्षित वन घोषित कर दिया गया। ये ऐसे जंगल थे जहाँ अंग्रेज़ों की ज़रूरतों के लिए इमारती लकड़ी पैदा होती थी। इन जंगलों में लोगों को स्वतंत्र रूप से घूमने, झूम खेती करने, फल इकट्ठा करने या पशुओं का शिकार करने की इजाज़त नहीं थी। ऐसी सूरत में झूम काश्तकार किस तरह ज़िंदा रह सकते थे? इसलिए, उनमें से बहुतों को काम और रोजगार की तलाश में मजबूरन दूसरे इलाकों में जाना पड़ा।

जैसे ही अंग्रेज़ों ने जंगलों के भीतर आदिवासियों के रहने पर पाबंदी लगा दी, उनके सामने एक समस्या पैदा हो गई। समस्या यह थी कि रेलवे **स्लीपर्स** के लिए पेड़ काटने और लकड़ी को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए मज़दूरों का इंतज़ाम कहाँ से किया जाए?

स्लीपर – लकड़ी के क्षैतिज तख्ते जिन पर रेल की पटरियाँ बिछाई जाती हैं।

औपनिवेशिक अधिकारियों ने इसका भी एक हल ढूँढ़ निकाला। उन्होंने तय किया कि झूम काश्तकारों को जंगल में ज़मीन के छोटे टुकड़े दिए जाएँगे और उन्हें वहाँ खेती करने की भी छूट होगी बशर्ते गाँवों में रहने वालों को वन विभाग के लिए मज़दूरी करनी होगी और जंगलों की देखभाल करनी होगी। इस तरह, बहुत सारे इलाकों में वन विभाग ने सस्ते श्रम की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए वन गाँव बसा दिए।

स्रोत 2

"अंग्रेज़ों के इस देस में जीना कितना कठिन है"

1930 के दशक में वेरियर ऐल्विन ने मध्य भारत में रहने वाले बैगा आदिवासियों के इलाकों का दौरा किया था। ऐल्विन इन लोगों के रीति-रिवाज, उनकी कला और लोक संस्कृति को जानना चाहते थे। उन्होंने बैगाओं के बहुत सारे गीत इकट्ठे किए जिनमें इस बात पर शिकायत की गई है कि अंग्रेज़ों के शासन में बैगा कितने बुरे दौर से गुजर रहे हैं।

अंग्रेज़ों के इस देस में जीना कितना है मुश्किल
जीना कितना है मुश्किल
ज़मीदार बैठा है गाँव में
दरवाज़े में कोतवार
बगीचों में पटवारी
खेतों में सरकार
अंग्रेज़ों के इस देस में जीना कितना है मुश्किल
पशु कर अदा करने के लिए बेचते हैं गाय
तो भैंस बेचते हैं जंगल कर के लिए
बैलों को बेच कर अदा करते हैं लगान
भोजन पाएँ कहाँ से
अंग्रेज़ों के इस देस में

वेरियर ऐल्विन एवं शामरॉव हिवाले, सॉंग्स ऑफ़ दि मैकल, पृष्ठ 316 से उद्धृत।

चित्र 8 – गोदारा औरतें बुनाई करती हुईं।

बहुत सारे आदिवासी समूहों ने औपनिवेशिक वन कानूनों का विरोध किया। उन्होंने नए नियमों का पालन करने से इनकार कर दिया और उन्हीं तौर-तरीकों से चलते रहे जिन्हें सरकार गैर-कानूनी घोषित कर चुकी है। कई बार उन्होंने खुलेआम बग़ावत भी कर दी। 1906 में सोंग्रम संगमा द्वारा असम में और 1930 के दशक में मध्य प्रांत में हुआ वन सत्याग्रह इसी तरह के विद्रोह थे।

व्यापार की समस्या

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान जनजातीय समूहों ने पाया कि व्यापारी और महाजन जंगलों में जल्दी-जल्दी आने लगे हैं। वे वन उपज खरीदने, नक़द कर्ज़ा देने और आदिवासियों को मजदूरी पर रखने के लिए आ रहे थे। इन सारे बदलावों से क्या असर पड़ने वाले हैं, यह समझने में आदिवासियों को कुछ समय लगा।

यह समझने के लिए आइए रेशम उत्पादकों की स्थिति को देखें। अठारहवीं सदी में भारतीय रेशम की यूरोपीय बाज़ारों में भारी माँग थी। भारतीय रेशम की अच्छी गुणवत्ता सबको आकर्षित करती थी और भारत का निर्यात तेज़ी से बढ़ रहा था। जैसे-जैसे बाज़ार फैला ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसर इस माँग को पूरा करने के लिए रेशम उत्पादन पर ज़ोर देने लगे।

वर्तमान झारखण्ड में स्थित हज़ारीबाग के आस-पास रहने वाले संथाल रेशम के कीड़े पालते थे। रेशम के व्यापारी अपने ऐजेंटों को भेजकर आदिवासियों को कर्ज़े देते थे और उनके कृमिकोषों को इकट्ठा कर लेते थे। एक हज़ार कृमिकोषों के लिए 3-4 रुपए मिलते थे। इसके बाद इन कृमिकोषों को बर्दवान या गया भेज दिया जाता था जहाँ उन्हें पाँच गुना कीमत पर बेचा जाता था। निर्यातकों और रेशम उत्पादकों के बीच कड़ी का काम करने वाले बिचौलियों को जमकर मुनाफ़ा होता था। रेशम उत्पादकों को बहुत मामूली फ़ायदा मिलता था। स्वाभाविक है कि बहुत सारे आदिवासी समुदाय बाज़ार और व्यापारियों को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानने लगे थे।

चित्र 9 – चटाई बुनती एक हाजाँग औरत

औरतों के लिए घरेलू काम सिर्फ़ घर तक ही सीमित नहीं था। वे खेतों और कारखानों में भी अपने बच्चों को साथ लेकर जाती थीं।

चित्र 10 – बिहार के कोयला खनिक, 1948.

1920 के दशक में बिहार की झरिया और रानीगंज कोयला खदानों में काम करने वाले लगभग 50 प्रतिशत खनिक आदिवासी थे। अँधेरी और दमघोंटू खदानों की गहराई में काम करना न केवल शरीर को तोड़ता था बल्कि यह खतरनाक था। वह अकसर सचमुच जान ले लेता था। 1920 के दशक में देश की कोयला खदानों में हर साल 2,000 से ज्यादा मज़दूर मारे जाते थे।

काम की तलाश

काम की तलाश में घर से दूर जाने वाले आदिवासियों की दशा तो और भी खराब थी। उन्नीसवीं सदी के आखिर से ही चाय बागान फैलने लगे थे। खनन उद्योग भी एक महत्वपूर्ण उद्योग बन गया था। असम के चाय बाग़ानों और झारखण्ड की कोयला खादानों में काम करने के लिए आदिवासियों को बड़ी संख्या में भर्ती किया गया। इन लोगों को ठेकेदारों की मार्फ़त भर्ती किया जाता था। ये ठेकेदार न केवल उन्हें बहुत कम वेतन देते थे बल्कि उन्हें वापस घर भी लौटने नहीं देते थे।

गतिविधि

पता लगाएँ कि कोयला खदानों में काम के हालात बदल गए हैं या नहीं। पता लगाएँ कि खदानों में हर साल कितने लोग मरते हैं और उनकी मौत के क्या कारण होते हैं।

नज़दीक से देखने पर

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों के दौरान देश के विभिन्न भागों में जनजातीय समूहों ने बदलते कानूनों, अपने व्यवहार पर लगी पाबंदियों, नए करों और व्यापारियों व महाजनों द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ़ कई बार बग़ावत की। 1831–32 में कोल आदिवासियों ने और 1855 में संथालों ने बग़ावत कर दी थी। मध्य भारत में बस्तर विद्रोह 1910 में हुआ और 1940 में महाराष्ट्र में वर्ली विद्रोह हुआ। बिरसा जिस आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे वह भी इसी तरह का विद्रोह था।

स्रोत 3

लहू लुहान मेरे कंधे

मुंडा आदिवासियों के गीतों में उनके कष्ट झलकते हैं।

हाय! कोहलू के बैल की
तरह मैं
लहू लुहान मेरे कंधे
ज़मींदार के दूत दिन और
रात करते हैं मुझे परेशान
बड़बड़ाता हूँ मैं यही दिन
और रात
हाय! यही है मेरी हालत!
नहीं है मेरा कोई ठिकाना
नहीं हैं मेरी कोई खुशियाँ

के.एस. सिंह, बिरसा मुंडा एंड हिज़ मूवमेंट, पृष्ठ 12

बिरसा मुंडा

बिरसा का जन्म 1870 के दशक के मध्य में हुआ। उनके पिता गरीब थे। बिरसा का बचपन भेड़–बकरियाँ चराते, बाँसुरी बजाते और स्थानीय अखाड़ों में नाचते–गाते बीता था। उनकी परवरिश मुख्य रूप से बोहोंडा के आस–पास के जंगलों में हुई। गरीबी से लाचार बिरसा के पिता को काम की तलाश में जगह–जगह भटकना पड़ता था। लड़कपन में ही बिरसा ने अतीत में हुए मुंडा विद्रोहों की कहानियाँ सुन ली थीं। उन्होंने कई बार समुदाय के सरदारों (मुखियाओं) को विद्रोह का आह्वान करते देखा था। बिरसा के समुदाय के लोग ऐसे स्वर्ण युग की बात किया करते थे जब मुंडा लोग *दीकुओं* के उत्पीड़न से पूरी तरह आज़ाद थे। सरदारों का कहना था कि एक बार फिर उनके समुदाय के परंपरागत अधिकार बहाल हो जाएँगे। वे खुद को इलाके के मूल निवासियों का वंशज मानते थे और अपनी ज़मीन की लड़ाई (मुल्क की लड़ाई) लड़ रहे थे। वे लोगों को याद दिलाते थे कि उन्हें अपना साम्राज्य वापस पाना है।

बिरसा स्थानीय मिशनरी स्कूल में जाने लगे जहाँ उन्हें मिशनरियों के उपदेश सुनने का मौका मिला। वहाँ भी उन्होंने यही सुना कि मुंडा समुदाय स्वर्ग का साम्राज्य हासिल कर सकता है और अपने खोये हुए अधिकार वापस पा सकता है। अगर वे अच्छे ईसाई बन जाएँ और अपनी "खराब आदतें" छोड़ दें तो ऐसा हो सकता है। बाद में बिरसा ने एक जाने–माने **वैष्णव** धर्म प्रचारक के साथ भी कुछ समय बिताया। उन्होंने जनेऊ धारण किया और शुद्धता व दया पर जोर देने लगे।

अपनी किशोरावस्था में बिरसा जिन विचारों के संपर्क में आए, उनसे वह काफ़ी गहरे तौर पर प्रभावित थे। बिरसा का आंदोलन आदिवासी समाज को सुधारने का आंदोलन था। उन्होंने मुंडाओं से आह्वान किया कि वे शराब पीना छोड़ दें, गाँवों को साफ़ रखें और डायन व जादू–टोने में विश्वास न करें। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि बिरसा ने मिशनरियों और हिंदू जमींदारों का भी लगातार विरोध किया। वह उन्हें बाहर का मानते थे जो मुंडा जीवन शैली को नष्ट कर रहे थे।

वैष्णव – विष्णु की पूजा करने वाले वैष्णव कहलाते हैं।

1895 में बिरसा ने अपने अनुयायियों से आह्वान किया कि वे अपने गौरवपूर्ण अतीत को पुनर्जीवित करने के लिए संकल्प लें। वह अतीत के एक ऐसे स्वर्ण युग – सतयुग – की चर्चा करते थे जब मुंडा लोग अच्छा जीवन जीते थे, तटबंध बनाते थे, कुदरती झरनों को नियंत्रित करते थे, पेड़ और बाग लगाते थे, पेट पालने के लिए खेती करते थे। उस काल्पनिक युग में मुंडा अपने बिरादरों और रिश्तेदारों का खून नहीं बहाते थे। वे ईमानदारी से जीते थे। बिरसा चाहते थे कि लोग एक बार फिर अपनी ज़मीन पर खेती करें, एक जगह टिक कर रहें और अपने खेतों में काम करें।

अंग्रेज़ों को बिरसा आंदोलन के राजनीतिक उद्देश्यों से बहुत ज्यादा परेशानी थी। यह आंदोलन मिशनरियों, महाजनों, हिंदू भूस्वामियों और सरकार को बाहर निकालकर बिरसा के नेतृत्व में मुंडा राज स्थापित करना चाहता था।

यह आंदोलन इन्हीं ताकतों को मुंडाओं की सारी समस्याओं व कष्टों का स्रोत मानता था। अंग्रेज़ों की भूनीतियाँ उनकी परंपरागत भूमि व्यवस्था को नष्ट कर रही थीं, हिंदू भूस्वामी और महाजन उनकी ज़मीन छीनते जा रहे थे और मिशनरी उनकी परंपरागत संस्कृति की आलोचना करते थे।

जब आंदोलन फैलने लगा तो अंग्रेज़ों ने सख़्त कार्रवाई का फ़ैसला लिया। उन्होंने 1895 में बिरसा को गिरफ़्तार किया और दंगे-फ़साद के आरोप में दो साल की सज़ा सुनायी।

1897 में जेल से लौटने के बाद बिरसा समर्थन जुटाते हुए गाँव-गाँव घूमने लगे। उन्होंने लोगों को उकसाने के लिए परंपरागत प्रतीकों और भाषा का इस्तेमाल किया। वे आह्वान कर रहे थे कि उनके नेतृत्व में साम्राज्य की स्थापना के लिए "रावणों" (*दीकु* और यूरोपीयों) को तबाह कर दें। बिरसा के अनुयायी *दीकु* और यूरोपीय सत्ता के प्रतीकों को निशाना बनाने लगे। उन्होंने थाने और चर्चों पर हमले किए और महाजनों व ज़मींदारों की संपत्तियों पर धावा बोल दिया। सफ़ेद झंडा बिरसा राज का प्रतीक था।

सन् 1900 में बिरसा की हैज़े से मृत्यु हो गई और आंदोलन ठंडा पड़ गया। यह आंदोलन दो मायनों में महत्वपूर्ण था। पहला – इसने औपनिवेशिक सरकार को ऐसे कानून लागू करने के लिए मजबूर किया जिनके जरिए *दीकु* लोग आदिवासियों की ज़मीन पर आसानी से कब्ज़ा न कर सकें। दूसरा, इसने एक बार फिर जता दिया कि अन्याय का विरोध करने और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध अपने गुस्से को अभिव्यक्त करने में आदिवासी सक्षम हैं। उन्होंने अपने खास अंदाज़ में, अपनी खास रस्मों और संघर्ष के प्रतीकों के ज़रिए इस काम को अंजाम दिया।

अन्यत्र

हमें नक़दी की क्या ज़रूरत!

ऐसे बहुत सारे कारण हैं जिनकी वजह से आदिवासी और अन्य सामाजिक समूह प्राय: बाज़ार के लिए पैदावार नहीं करना चाहते। पापुआ न्यू गिनी के इस जनजातीय गीत में इस बात की झलक मिलती है कि वहाँ के आदिवासी बाज़ार को किस तरह देखते हैं।

कहते हैं नकदी
है बेकार का कूड़ा-करकट
बारिश ये रोक नहीं सकती
और देती है तकलीफें

इन सरकारी मठाधीशों के लिए
क्यों मैं जोश से करूँ काम
क्यों मैं चढ़ूँ नारियल के पेड़ पर?

तो है नकदी फसलें अच्छी
लेकिन श्रीमान मुझे बताएँ
अगर ख़रीदने को नहीं है कुछ
तो मैं चिन्ता करूँ क्यों?

कोहेन, क्लार्क एवं हासवेल, सं., दि इकॉनॉमी ऑफ़ सब्सिस्टेंस एग्रीकल्चर (1970), में उद्धृत एक गीत पर आधारित।

फिर से याद करें

1. रिक्त स्थान भरें :

(क) अंग्रेज़ों ने आदिवासियों को .... के रूप में वर्णित किया।

(ख) झूम खेती में बीज बोने के तरीके को .... कहा जाता है।

(ग) मध्य भारत में ब्रिटिश भूमि बंदोबस्त के अंतर्गत आदिवासी मुखियाओं को .... स्वामित्व मिल गया।

(घ) असम के .... और बिहार की .... में काम करने के लिए आदिवासी जाने लगे।

आइए कल्पना करें

मान लीजिए कि आप उन्नीसवीं सदी के वन गाँव में रहने वाले झूम काश्तकार हैं। आपको कहा गया है कि जहाँ आप पैदा हुए हैं अब वह ज़मीन आपकी नहीं मानी जाएगी। अंग्रेज़ अफ़सरों से मिलकर आप अपनी समस्याओं के बारे में बताना चाहते हैं। आप उन्हें क्या बताएँगे?

2. सही या गलत बताएँ :

(क) झूम काश्तकार ज़मीन की जुताई करते हैं और बीज रोपते हैं।

(ख) व्यापारी संथालों से कृमिकोष खरीदकर उसे पाँच गुना ज़्यादा कीमत पर बेचते थे।

(ग) बिरसा ने अपने अनुयायियों का आह्वान किया कि वे अपना शुद्धिकरण करें, शराब पीना छोड़ दें और डायन व जादू-टोने जैसी प्रथाओं में यकीन न करें।

(घ) अंग्रेज़ आदिवासियों की जीवन पद्धति को बचाए रखना चाहते थे।

आइए विचार करें

3. ब्रिटिश शासन में घुमंतू काश्तकारों के सामने कौन सी समस्याएँ थीं?
4. औपनिवेशिक शासन के तहत आदिवासी मुखियाओं की ताकत में क्या बदलाव आए?
5. दीकुओं से आदिवासियों के गुस्से के क्या कारण थे?
6. बिरसा की कल्पना में स्वर्ण युग किस तरह का था? आपकी राय में यह कल्पना लोगों को इतनी आकर्षक क्यों लग रही थी?

आइए करके देखें

7. अपने माता-पिता दोस्तों या शिक्षकों से बात करके बीसवीं सदी के अन्य आदिवासी विद्रोहों के नायकों के नाम पता करें। उनकी कहानी अपने शब्दों में लिखें।